卐 नमः श्रीजानकीजानये 卐

अथ भगवद्रामानन्दाचार्यप्रणीतानन्दभाष्योपेता

माण्डूक्योपनिषत्

हरिः ॐ ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योप व्याख्यानं भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव । यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ॥१॥

卐 सर्वेश्वर श्रीसीतारामाभ्यां नमः 卐

आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्याय नमः

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यकृता

卐 लघुदीपिका 卐

सीतारामसमारम्भां शुकबोधायनान्विताम् ।
रामानन्दार्यमध्यस्थां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

ॐ इस प्रकार का जो यह अक्षर है वह परब्रह्म श्रीरामतत्त्व है एवं नाश रहित सत्य तत्त्व है। ब्रह्मा से छोटे कीट तक परिदृश्यमान यह सव संसार उसी श्रीरामतत्त्व का उपव्याख्यान यानी सन्निकटतम महत्व का वर्णन करने वाला है। भूतकाल में स्थित वर्तमान काल में तथा भविष्य काल में भी रहनेवाला ईश्वर ही है। चित् एवं अचित् रूप संसार ओंकार-श्रीरामजी से ही निरूपित किया जाता है अतः

संसार ब्रह्मात्मक है एवं जो त्रिकालातीत-भूत भविष्य तथा वर्तमान तीनों काल से अन्य तथा विकार रहित है वह भी ॐ शब्द से कथित सर्वेश्वर श्रीरामजी ही हैं ॥१॥

जाग्रत्काले य ईशो विविधमसुमतो भोजयत्यर्थजातं,
स्थूलं भुङ्क्ते स्वयं चाक्षिणि वसतिमुपादाय सङ्कर्षणात्मा ।
प्रद्युम्नः स्वप्नजातं तदनु च सुविविक्तं सुषुप्तेऽनिरुद्धो
यस्तुर्ये वासुदेवः स भवतु शरणं रामचन्द्रः ससीतः ॥१॥

आराध्यं ब्रह्मरुद्रादेर्जगद्धेतुं च मुक्तिदम् ।
दिव्यदेहं गुणाम्भोधिं रामं ब्रह्म समाश्रये ॥२॥

सूत्रवृत्तिकृतौ नत्त्वा व्यासबोधायनौ मुनी ।
श्रीमन्तं राघवानन्दाचार्यं गुरुं नमाम्यहम् ॥३॥

कुर्वे गुरुं नमस्कृत्य ज्ञानभक्तिदयानिधिम् ।
माण्डूक्योपनिषदो हि भाष्यमानन्दसंज्ञकम् ॥४॥

卐 श्री रामाय नमः 卐

श्रीआनन्दभाष्यकाराय नमोनमः

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्य

卐 प्रणीत प्रकाश 卐

सीतारामसमारम्भां शुकबोधायनान्विताम् ।
रामानन्दार्यमध्यस्थां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

जो भगवान् श्रीसीताजी सहित श्रीरामजी जाग्रत् काल में इन्द्रिय प्रदेश में निवास करते हुए स्थूल पदार्थ

का भोग जीव समुदाय को कराते हैं एवं स्वप्नकाल में संकर्षण रूपसे स्वाप्निक पदार्थ का भोग कराते हैं और सुषुप्तिकाल में विविक्त भोग्य जात का अनिरुद्ध रूपसे कराते हैं एतादृश श्रीवासुदेव स्वरूपधारी सर्वेश्वर श्रीराम चन्द्रजी मेरी शरण हों अर्थात् भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

जो सर्वेश श्रीरामजी श्रीब्रह्मा रुद्र आदि से आराध्य हैं तथा जगत् के कारण हैं और मोक्ष को देनेवाले हैं दिव्य देहाश्रित तथा गुण के सागर हैं उनको प्रणाम करता हूँ ॥२॥

महर्षि श्रीव्यासजी तथा श्रीबोधायनजी सूत्रकार एवं वृत्तिकार को नमस्कार करके गुरु श्रीमान् राघवानन्दा चार्यजी को नमस्कार करता हूँ ॥३॥

ज्ञानभक्ति और दया के सागर गुरुजी को नमस्कार कर माण्डूक्य उपनिषत् का आनन्दभाष्य मैं लिखता हूँ ॥४॥

प्रणवावयवैरकारोकारमकारैः समस्तेन प्रणवेन च प्रतिपाद्यानां भगवत्स्वरूपाणामुपासनाऽनयोपनिषदा प्रतिपद्यते । तस्या उपासनाया समष्ट्या व्यष्ट्या चा लम्बनीभूतमोङ्कारं प्रथमं स्तौति 'ओमित्येतदक्षरमिति' 'इति' पदमोङ्कारस्यानुकरणत्वद्योतकम् । एतच्छ्रवण प्रत्यक्षगोचरीभूतम् ओमिति अक्षरं वर्णस्वरूपम् । इदं सर्वं चिदचिदात्मकं सर्वं जगत् तत्तत्प्रतीतिविषय

भूतं चिद्रूपमचिद्रूपञ्च सर्वं जगद् ओमित्यक्षरमेव । ओङ्कार एवेत्यर्थः । अनेन सर्वस्य जगतः प्रणवविस्तारोक्त्या प्रणवस्तुतिर्व्यज्यते । संक्षेपतः सर्वस्य प्रणवत्वमुक्त्वा विशेषतो विविनक्ति-तस्योपव्याख्यानमिति। तस्य प्रणवस्य उप उपपन्नम् । युक्तमित्येतत् । विशेषेण आ समन्तात् ख्यानं प्रकथनम् । समुपयुक्तं विवेचनमित्येतत् । किन्तदित्यत्राह-भूतमिति । भूतमतीतकालीनम् । भवत् वर्तमानकालीनम् । भविष्यद् अनागतकालीनम् । इति एवं रीत्या सर्वं कालत्रयावच्छिन्नं यद्यत्तत्सर्वमोङ्कार एव । ओङ्कारस्वरूपमेवेत्यर्थः । यत्र त्रिकालातीतं कालत्रयाऽपरिच्छिन्नं चिद्वस्तु अव्याकृतं प्रधानञ्च तदपि ओङ्कारस्वरूपमेवेत्यर्थः । ओङ्कारस्य ब्रह्मवाचकत्वाद् वाच्यवाचकयोश्चाभेदाध्यवसायाद् ब्रह्मणः शरीरभूतस्य सर्वस्य जगतः ब्रह्मात्मकत्वात् प्रणवात्मत्वकमपि जगतः समुच्यमानं न विरुध्यते । आलम्बनीभूतस्य प्रणवस्य माहात्म्यञ्चाख्यायत इति भावः ॥१॥

प्रणव का अवयव रूप जो अकार उकार और मकार हैं उनसे तथा समस्त प्रणव से प्रतिपाद्य जो परमपुरुष का स्वरूप उस स्वरूप की उपासना इस माण्डूक्योपनिषत् से प्रतिपादिता होती है । उस उपासना का समष्टि समुदाय रूपसे

तथा व्यष्टि अर्थात् प्रत्येक अवयव रूप से आलम्बन रूप ओंकार ही है तो प्रथमतः उसी ओंकार का स्तवन करते हैं- **'ओमित्येतदक्षरमिति'** इति यह अव्यय पद ओंकार के अनु करण का द्योतक है। यह अर्थात् श्रावण प्रत्यक्ष विषयीभूत ओम् इत्याकारक अक्षर वर्णस्वरूप है। यह चिदचि दात्मक जड चेतन साधारण समस्त जगत् है वह तत्तत् प्रतीति का विषयीभूत सब पदार्थ ओमित्याकारक अक्षर स्वरूप ही है अर्थात् ओंकार स्वरूप ही है। एतावता समस्त जगत् के प्रणव का ही विस्ताररूप है इस कथन से प्रणव ओंकार की स्तुति अभिव्यक्त होती है। संक्षेपरूप से समस्त जडचेतन जगत् की प्रणवरूपता का कथन करके अव विशेष रूपसे विवेचन करने के लिये कहते हैं-**'तस्योपव्याख्यानमिति'** **'तस्य'** उस प्रणव का **उप**-उपपन्न अर्थात् युक्त है। विः विशेष रूपसे आ समन्तात् ख्यान अर्थात् कथन अर्थात् ओंकार का विवेचन करना समुपयुक्त है। वह क्या है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-**'भूतमिति'** भूत अतीत कालिक भवत् वर्तमान कालिक भविष्यत् अनागत कालिक इति इस रीति से सब कालत्रयावच्छिन्न जो जो पदार्थ है वह सब ओंकार का ही स्वरूप है। और जो त्रिकालातीत अर्थात् कालत्रय से अपरिच्छिन्न चेतन पदार्थ है तथा अव्याकृत प्रधान है वह भी ओंकार का स्वरूप ही है। ओंकार **'तस्य वाचकः प्रणवः'** इस पतञ्जलिजी के नियमानुसार परमब्रह्म का वाचक है और वाच्य वाचक में अभेद होने से ब्रह्म का

शरीर अवयव स्वरूप संपूर्ण जगत् के ब्रह्मस्वरूप होने से संपूर्ण जगत् को प्रणवरूप कहने में कोई भी विरोध नहीं होता है। इस कथन से आलम्बन रूप जो प्रणव है उसका माहात्म्य प्रकाशित होता है, ऐसा भाव है **'रामनाम्नः समुत्पन्नः प्रणवो मोक्षदायकः'** इस श्रीमद्रामायणीय वचनानुसार **'रां'** इस बीज अक्षर से ओंकार की निस्पत्ति होती है जो मोक्ष का साधक है प्रकृत विषय की विशेष विवेचना श्रीरामतापनियोपनिषत् भाष्य एवं श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर की टीका में किया हूं वह वहीं द्रष्टव्य है ॥१॥

सर्वं ह्येतद्ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात् ॥२॥

यह ओंकार शब्द से कथित ब्रह्म परब्रह्म श्रीरामजी ही सभी जगह में पूर्णरूप से स्थित हैं। यह सभी के अन्तर्यामीतया व्याप्त आत्मा ओंकार शब्द से कथित सर्वेश्वर श्रीरामजी ही हैं। वह अक्षर पद से कथित ब्रह्मा से कीटपतङ्ग पर्यन्त अन्तरात्मा के रूप में स्थित सर्वव्यापक आत्मा स्वस्वरूपभूत चार पाद यानी अंश वाला है ॥२॥

सर्वमोङ्कार एवेति वाचकप्राधान्येय पूर्वमुक्तम्। अधुना वाच्यप्राधान्येनापि तदुच्यते-सर्वं ह्येतदिति। एतद् दृश्यमानं सर्वं समग्रं भूतभविष्यद्भेदेन समवस्थितं जगद् ब्रह्मैव ब्रह्मात्मकमेव विनिश्चितमेतद् ब्रह्मविद्भिः। सर्वस्य परब्रह्मकार्यत्वात् तच्छरीरत्वाच्च। एतत् कथनेन वाच्यवाचकयोर्ब्रह्मप्रणवयोरभे

दाध्यवसायः सूचितो भवति । अन्यथा पूर्वं प्रणवः सर्वम् अत्र ब्रह्मैव सर्वमिति विरुद्धकथनात् पूर्वापर वाक्ययोरसङ्गतार्थाभिधायकत्वमापद्येत । अयमात्मा ब्रह्म, अयम् अस्मदादिभिरहमितिप्रतीतिगोचरतयाऽनुभूयमान आत्मा जीवात्मा पूर्वमन्त्रे यच्च त्रिकालातीतमित्येनेनोक्तः कालत्रयापरिच्छिन्नः सोऽपि ब्रह्मैव ब्रह्मात्मक एवेत्यर्थः । अनेन समस्तप्रणवप्रतिपाद्यं परब्रह्मात्मकं भगवत्स्वरूपमुक्तं भवति । सम्प्रति प्रणवावयवप्रतिपाद्यानि भगवत्स्वरूपाणि वक्तुकामः समस्तप्रणवप्रतिपाद्यस्य भगवतश्चतुष्पात्त्वं प्रतिपादयति-सोऽयमात्मा चतुष्पादिति । स समस्तप्रणवप्रतिपाद्योऽयं सर्वनियामकतया तत्तद्देहेषु अवस्थितः आत्मा परमात्मा चतुष्पात् । चत्वारः पादाः स्वरूपांशा यस्य स चतुष्पात् । चत्वारि अस्यांश भूतानि स्वरूपाणीत्यर्थः ॥२॥

इत्यथर्ववेदीयमाण्डूक्योपनिषदो भगवद्रामानन्दाचार्यप्रणीतानन्दभाष्ये

卐 प्रथमः खण्डः ॥१॥ 卐

सब पदार्थ ओंकाररूप है इसप्रकार से वाचक प्रणव की प्रधानता करके कहा गया है । अब प्रणव का जो वाच्य है उसकी प्रधानता करके कहते हैं-'**सर्वं ह्येत दित्यादि**' यह परिदृश्यमान समग्रभूत वर्तमान भविष्यद् भेद से समवस्थित जगत् ब्रह्म ही है अर्थात् ब्रह्मात्मक है ऐसा ब्रह्मज्ञानियों ने निश्चित किया है । क्योंकि सब पदार्थ ब्रह्म का कार्य है और

ब्रह्म का शरीर है अतः ब्रह्मात्मक है। इस कथन से वाच्य ब्रह्म और वाचक प्रणव में अभेदाध्यवसाय का सूचन होता है अन्यथा पहले तो कहा है किस पदार्थ का प्रणवस्वरूप है और यहाँ कहा कि सब पदार्थ ब्रह्मरूप है तो इसप्रकार से विरुद्धार्थ के प्रतिपादन करने से पूर्वापर वाक्य में विरुद्धार्थ प्रतिपादकत्व की आपत्ति होती। **'अयमात्मा ब्रह्म'** यह अस्मदादि के द्वारा **'अहम्'** इत्याकारक प्रत्यक्ष प्रतीति विषयतया अनुभूयमान आत्मा अर्थात् जीवात्मा जो कि पूर्वमन्त्र में **'त्रिकालातीतम्'** इस वाक्य से कहा गया है तथा जो कालत्रय से अपरिच्छिन्न है वह जीवात्मा भी ब्रह्म है अर्थात् ब्रह्मात्मक ही है। इससे समस्त प्रणव से प्रतिपाद्य परब्रह्म लक्षण भगवान् का स्वरूप कथित होता है। संप्रति प्रणव के अवयव से प्रतिपादनीय भगवान् के स्वरूप का प्रतिपादन करने की इच्छा से समस्त प्रणव से प्रतिपाद्य भगवान् का चतुष्पाद रूपसे प्रतिपादन करते हैं-**'सोयमात्मा चतुष्पादिति'** वह समस्त प्रणव से प्रतिपाद्य यह सर्व नियामक रूपसे तत्तत् देव मनुष्यादि देह में अवस्थित आत्मा अर्थात् परमात्मा जो कि सर्वजगत् के कारण हैं वह भगवान् चतुष्पाद हैं चार पैर स्वरूप अर्थात् अंश है जिनका ऐसे परमात्मा हैं चार इनके अंशरूप स्वरूप हैं ॥२॥

卐 इति माण्डूक्योपनिषदः श्रीरामानन्दभाष्यप्रकाशे

प्रथमः खण्डः 卐

卐 अथ द्वितीयः खण्डः 卐

जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंश तिमुखः स्थूलभुग् वैश्वानरः प्रथमः पादः ॥१॥

जहाँ रहकर जागता है वह चक्षु स्थान है जिसका बाहरी विषयों का प्रकाशक होने के कारण सात अंग एवं उन्नीस मुखों वाला अच्छे भोगों को भोगने वाला स्थूल वैश्वानर नामक प्रथम पाद है ॥१॥

यत्र स्थित्वा जीवो जागर्त्ति तत्स्थानं जागरितं तदेव स्थानं यस्य तादृशोऽयं प्रथमः पादः । तच्च स्थानं दक्षिणस्य चक्षुषोऽग्रभागो दक्षिणाक्षिमुखे विश्व इत्युक्तेः । तत्र स्थित्वाऽयं परमात्मा जीवं स्थूल विषयान् भोजयतीत्यर्थः । बहिष्प्रज्ञो बहिर्बाह्यार्थेषु प्रज्ञा प्रज्ञारना यस्य स बहिष्प्रज्ञः । ज्ञाधातुरन्तर्भा वितण्यर्थ इत्यर्थः । बाह्यार्थानयं ज्ञापयति जीवानां कृते इतिभावः । सप्ताङ्गः सप्त सप्तत्वसंख्यावन्ति अं गानि यस्य स सप्ताङ्गः तानि चाङ्गानि वैश्वानर विश्वोक्तानि द्युलोकसूर्यवायुव्योमरयिपृथिव्याहवनीयप दोक्तानि मूर्धचक्षुःप्राणशरीरमध्यभागमूत्राशयपादमुख रूपाणि समनुसन्धेयानि । श्रुतिर्भवति-'तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाः चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्मात्मा, सन्देहो बहुलो वस्तिरेव रयिः

पृथिव्येव पादौ आस्यमाहवनीयः' (छा. अ. ५ खं. १८ मं.२) अस्य परमात्मनः पादस्य सर्वं स्थूलभूतं जगद् अङ्गसम्बन्धतया विवक्षितमिहेति भावः। पुनरयं कीदृश इत्यत्राह-एंकोनविंशतिमुखः । एकोनविंशति संख्याकानि मुखानि उपलब्धिः कर्मणश्च द्वाराणि यस्य सः । पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि पञ्च प्राणाः प्राणापानसमानोदानव्यानाः । चत्वार्यन्तःकरणानि चेत्येतैरयं स्थूलानर्थान् भुङ्क्ते भोजयति जीववर्गमिति भावः । स्थूलभुक् स्थूलान् बाह्यान् पदार्थान् भुंक्ते भोजयति चेति स्थूलभुक् । वैश्वानरो नयतीति नरो नेता विश्वेषां समेषां जीवानां नरो विश्वानरः । नरे संज्ञायामिति दीर्घः । स एव वैश्वानरः चक्षुर्निष्ठान् सर्वान् जीवान् स्थूलभोगाय नयनकर्त्ताऽयमितिभावः । अयं समस्तप्रणवप्रतिपाद्यस्य भगवतः प्रथमः पादः प्रथमं स्वरूपमंशभूतं प्रणवावयवाकारप्रतिपाद्यमित्यर्थः ॥१॥

जिस अवस्था में अवस्थित रह करके जीव जागता है उस स्थान को जागरित स्थान कहते हैं वह जागरित स्थान है जिसका उसका नाम है प्रथमपाद वह स्थान दाहिने चक्षु का अग्रभाग है। क्योंकि दक्षिण चक्षु के मुख में 'विश्व है' ऐसा कहा है। उस दक्षिण चक्षु के अग्रभाग में स्थित हो करके परमात्मा परमपुरुष जीव

को स्थूल विषय का भोग कराते हैं। **'बहिष्प्रज्ञः'** इति बाह्य अर्थरूपादि विषयक प्रज्ञा जिसे उसे बहिःप्रज्ञ कहते हैं। यहाँ ज्ञा धातु णिजर्थ व्यापारपरक है यह परमात्मा जीव के बाह्य अर्थ का ज्ञापन कराते हैं। **'सप्ताङ्गः'** इति सात संख्या वाला अंग है जिसे उसे सप्ताङ्ग कहते हैं। वे सात अंग ये हैं वैश्वानर विश्व प्रकरण में कथित द्युलोक सूर्य वायु व्योम रयि पृथिवी आहवनीय पद प्रतिपादित मूर्धा चक्षु प्राण शरीर मध्यभाग मूत्राशय पाद मुखरूप सात अंग हैं। श्रुति भी कहती है-'उस इस आत्मा वैश्वानर का सुतेजा सूर्य मूर्धा है' इत्यादि। इस परमात्मा के पाद का संपूर्ण स्थूलभूत जगत् सात अंगरूप से विवक्षित है। पुनः यह परमात्मा कीदृश है? इस ज़िज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-**'एकोनविंशति मुखः'** इति। एकोनविशति संख्यक मुख अर्थात् उपलब्धि तथा कर्म का द्वार है जिसे वह है एकोन विंशति मुख। इसमें पांच ज्ञानेन्द्रिय पांच कर्मेन्द्रिय पांच प्राणापान समानोदान व्यानवायु और मन बुद्धि चित्त अहंकार ये चार अन्तःकरण इन सब द्वार के सहारे जीववर्ग को स्थूल अर्थ विषय का भोग परमात्मा कराते हैं-**'स्थूल भुगिति'** स्थूल अर्थात् बाह्य अर्थ विषय का उपभोग करे तथा भोग करावे उसे स्थूलभुक् कहते हैं।

'वैश्वानरः' इति । ले जाये जो उसे नर अर्थात् नेता कहते हैं विश्व अर्थात् सर्वजीव का जो नेता उसे विश्वानर कहते हैं। **'नरे संज्ञायाम्'** इस सूत्र से नर शब्द के पर में रहने से पूर्वपद में दीर्घ होकर विश्वानर होता है विश्वानर को ही वैश्वानर कहते हैं। अर्थात् यह परमात्मा चक्षुः प्रदेशावस्थित सब जीव का स्थूल भोग के लिये नेता हैं। समस्त प्रणव से प्रतिपादित भगवान् यह प्रथम पाद है प्रथम अंशभूत स्वरूप जो कि प्रणव का प्रथम अवयव जो अकार है उससे प्रतिपादित हुआ ॥१॥

स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयः पादः ॥२॥

जीव जहां स्थित होकर स्वप्नों को देखता है वह अन्तःकरण में स्थित सात अंगवाला उन्नीस मुखवाला सूक्ष्म भोगों को भोगने वाला बाहर के पदार्थों से सर्वथा भिन्न तैजस नामक परब्रह्म का द्वितीय पाद है ॥२॥

स्वप्नस्थानो यत्र स्थाने पुरीततो नाड्या मुखे वर्तमानो जीव ईशसृष्टान् स्वाप्नान् सूक्ष्मान् पदार्थान् अनुभवति तत्स्थानं स्वप्न इत्युच्यते । अधिकरणार्थे नङ् प्रत्ययः । स्वप्न एव स्थानं यस्य स स्वप्नस्थानो मनःप्रदेशस्य मनस्यन्तस्तु तैजस इत्युक्तेः । अन्तः

प्रज्ञोऽन्तःशब्देन ईशसृष्टा सूक्ष्मा आन्तराः स्वप्नकालीनानुभवविषयाः पदार्था उच्यन्ते । तेषु प्रज्ञा ज्ञानानि ज्ञापनव्यापाराश्च यस्य सोऽन्तःप्रज्ञः । सूक्ष्मान् पदार्थान् जीववर्गाय ज्ञापयति स्वयमपि च जानातीत्यर्थः । सप्ताङ्गः सूक्ष्मभूतः । सर्वं जगदङ्गसप्तकत्वेनेह विवक्षितम् । तानि चाङ्गानि वैश्वानरो विश्वोक्तानि सप्त द्युलोकादीन्येव । पूर्वमन्त्रे स्थूलत्वाभिमतानि इह तु सूक्ष्मत्वाभिमतानीति विवेकः । एकोनविंशतिमुखो व्याख्यानं पूर्ववत् । प्रविविक्तभुक् प्रविविक्तान् बाह्यार्थापेक्षया भिन्नान् सूक्ष्मान् स्वप्नकालीनानर्थान् भुङ्क्ते भोजयति च जीववर्गमिति प्रविविक्तभुक् तैजसः । तेजोऽत्र मनः तत्र वर्त्तमानत्वेन तत्सम्बन्धितया तैजस इत्युच्यते द्वितीयः पादः । समस्तप्रणवप्रतिपाद्यस्य परमात्मनः प्रणवावयवद्वितीयमात्रारूपोकारप्रतिपाद्यं द्वितीयं स्वरूपमिदमित्यर्थः ॥२॥

'स्वप्नस्थानः' इत्यादि । जिस स्थान में पुरीतति नाडी के मुख में वर्तमान जीव परमेश्वर सर्जित स्वाप्निक सूक्ष्म पदार्थ का अनुभव करता है उस स्थानविशेष को स्वप्न कहते हैं । स्वप्न पद में अधिकरण अर्थ में नङ् प्रत्यय करके स्वप्न पद की सिद्धि होती है । स्वप्न ही स्थान है जिसका उसे स्वप्न स्थानवान् कहते हैं अर्थात्

मन प्रदेश में स्थित क्योंकि '**मनस्यन्तस्तु तैजसः**' ऐसा कहा है। '**अन्तःप्रज्ञः**' इति। यहाँ अन्तः शब्द से परमेश्वर सृष्ट सूक्ष्म एवं आन्तर स्वप्नकालिक अनुभव विषयीभूत पदार्थ कहा जाता है। तादृश विषयों में अर्थात् तादृश विषय विषयक ज्ञान तथा तदीय व्यापार है जिसे उसे अन्तःप्रज्ञ कहते हैं। अर्थात् जीववर्ग को तादृश पदार्थ को जनाते हैं तथा स्वयमपि जानते हैं '**सप्ताङ्गः**' इति। सूक्ष्मभूत संपूर्ण जगत् सात अङ्ग से विवक्षित है। वे अंग समुदाय वैश्वानर तथा विश्व प्रकरण में कथित द्युलोकादिक सात हैं। विशेषता इतनी ही है कि पूर्वमन्त्र में स्थूल का कथन किया है इस मन्त्र में वे ही पदार्थ सूक्ष्मरूप हैं–उसका कथन किया गया है। '**एकोनविंशतिमुखः**' इसका व्याख्यान पूर्ववत् समझना चाहिये। '**प्रविविक्तभुगिति**' प्रविविक्त बाह्यार्थ की अपेक्षा से भिन्न सूक्ष्म स्वप्नकालिक पदार्थ का स्वयं भोग करते हैं तथा जीववर्ग को भोग कराते हैं इसलिये प्रविविक्त भुक् तैजस कहलाते हैं। तेज शब्द का अर्थ है यहाँ मन उस मन में वर्तमान होने के कारण और मनः सम्बन्धी होने से तैजस कहलाते हैं यह परमात्मा का द्वितीय पाद है। अर्थात् समस्त प्रणव से प्रतिपादित परमात्मा का प्रणव के अवयव द्वितीय मात्रारूप जो

उकार है तत्प्रतिपाद्य द्वितीय स्वरूप है ॥२॥

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम् । सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवाऽऽनन्दमयो ह्यानन्द भुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ॥३॥

जहां सोया मानव कोई भी भोग विषयक कामना की इच्छा नहीं करता है एवं कोई भी स्वप्न पदार्थ को नहीं देखता है वह सुषुप्त स्थान है । सुषुप्त स्थान से एकाकारता को प्राप्त जीवात्मा के स्वरूप का बोधक आनन्दमय है वही पूर्णानन्द को भोग करने वाला ज्ञान स्वरूप मुख वाला है वही प्राज्ञ नामक तृतीय पाद है ॥३॥

जागरितस्वप्नस्थानापेक्षया वैलक्षण्यं प्रदर्शयितु सुषुप्तिस्थानस्य स्वरूपं पूर्वं दर्शयति यत्र सुप्त इति । यत्र यस्मिन् स्थाने हृदयाकाशरूपे सुप्तः परमात्मना संश्लेषविशेषं गतः 'प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तः' (बृ. ४।३।२१) इति श्रुतेः । एवंभूतो जीवः कञ्चन कमपि कामं मनोरथं न कामयते नेच्छति । कञ्चन कमपि स्वप्नं स्वाप्नमर्थं न पश्यति नावलोकयति । जाग्रत् स्वाप्नपदार्थज्ञानशून्यो भवतीत्यर्थः । तत् स्थानं सुषुप्त मित्युच्यत इत्यर्थः । सुषुप्तस्थानः सुषुप्तं स्थानमस्य स सुषुप्तस्थानो हृदयकमलकर्णिकाग्रस्थाकाशदेशस्थ इत्यर्थः । एकीभूतो ज्ञानानन्दादिकं यत् परमात्मनो

रूपं तद्विशिष्टतया परमात्मना सह एकीभावं प्राप्तः । प्रज्ञानघनः प्रज्ञानं घनं घनीभूतं यस्य तादृशः । प्रसरणशीलं हि विषयेषु ज्ञानं प्रभावद् विश्लिष्टावयवं सदघनमित्युच्यते प्रसरणविमुखं तु संश्लिष्टावयवं सद् घनमित्युच्यते । प्रज्ञानशब्दश्च प्रज्ञानजननव्यापारपरः । सुषुप्तिस्थानस्य प्राज्ञस्य भगवतो व्यापारस्तादृश एव भवति । यज्जीवस्य प्रज्ञानं बाह्येषु चान्तरेषु विषयेषु न प्रसरति आत्मस्वरूपमात्रे ज्ञानानन्दादौ प्रवर्तते । ज्ञानमत्र धर्मभूतं संकोचविकासशालिप्रभावद् द्रव्य मिति स्वसिद्धान्तानुगतमेव । अत एव प्राज्ञाख्यो भग वान् विज्ञानघन इत्युच्यते । एवकारेण इतरविषयज्ञान जननव्यापाररराहित्यमुच्यते । एतावन्तं सुखमहस्वाप्सं न किञ्चिदवेदिषमिति सुप्तोत्थितस्य परामर्शदर्शनात् । जीवस्य स्वस्वरूपमानन्दरूपं कालोऽज्ञानञ्च इति त्रयोऽत्र विषयाः स्फुरन्ति । एतेष्वेव तदीयज्ञानप्रसरो नान्यत्रेति घनप्रज्ञानो जीवः तादृशज्ञानजननव्यापा- रवत्त्वात् प्राज्ञः प्रज्ञानघन इतिभावः । आनन्दमय आनन्दप्राचुर्यविशिष्टः । पूर्णानन्दो भगवान् प्राज्ञ इत्यर्थः । हिशब्द आनन्दमयत्वप्रसिद्धिसूचकः । पूर्णा नन्दता तु शास्त्रेषु भगवतः प्रसिद्धेत्यर्थः । आनन्द भुक्। आनन्दं भुंक्ते भोजयति च जीववर्गमसौ

प्राज्ञः। नायमानन्दो वैषयिकः किन्तु स्वरूपानन्दः तत्प्रचुरत्वात् तद्युक्तत्वं न्याय्यमेव । चेतोमुखः । चेतःशब्दो नाहङ्कारिकचित्तवाची किन्तु ज्ञानवाची । चेतः स्वधर्मभूतज्ञानमेव मुखमानन्दकालाज्ञानोपलब्धि साधनं यस्य तादृशः । न हि वैश्वानरतैजसवदयमेकोन विंशतिमुखः । स्वचैतन्यद्वारैव जीवस्यानन्दादिभोग यितृत्वं तद्भोक्तृत्वञ्चास्य भगवत इतिभावः । प्राज्ञः प्रकृष्टं विषयान्तरेभ्यः समुत्कृष्टं स्वस्वरूपमानन्दमास मन्ताज्जानाति ज्ञापयति चेति प्राज्ञः । ज्ञाधातुरन्तर्भा वितण्यर्थोऽपि पक्षान्तरे । तृतीयः पादः प्राज्ञ एव समस्तप्रणवप्रतिपाद्यस्य प्रणवावयवमकारप्रतिपाद्य मंशभूतं तृतीयं स्वरूपमित्यर्थः ॥३॥

जाग्रत् स्वप्न प्रस्थानापेक्षया विलक्षणता का प्रदर्शन करने के लिये प्रथमतः सुषुप्त स्थान के स्वरूप को बतलाते हैं–'**यत्र सुप्तो न कञ्चन**' इत्यादि । हृदयाकाश रूप जिस स्थान में सोता हुआ परमात्मा के साथ सम्बन्ध विशेष को प्राप्त किया हुआ 'प्राज्ञ परमात्मा के साथ संपरिष्विक्त होता है' ऐसा श्रुत्यन्तर में कहा है । इसप्रकार का जीव किसी भी काम को अर्थात् मनोरथ की इच्छा नहीं करता है तथा किसी भी स्वाप्निक पदार्थ को नहीं देखता है अर्थात् जाग्रत् तथा स्वाप्निक पदार्थ

विषयक ज्ञान से रहित हो जाता है उस स्थान को सुषुप्त स्थान कहते हैं। **'सुषुप्तस्थान'** इति। सुषुप्त नामक स्थान जिसका अर्थात् हृदय कमल कर्णिका के अग्रभाग स्थान स्थित आकाश देश में विद्यमान। एवंभूत ज्ञान आनन्द प्रभृतिक जो परमात्मा का स्वरूप है तद्विशिष्ट परमात्मा के साथ एकीभाव को प्राप्त किया हुआ। **प्रज्ञानघन** इति प्रज्ञान है घनीभूत जिसका एतादृश। विषयों में प्रसरणशील प्रभा की तरह विशिष्ट अवयव वाला होता हुआ अघन कहलाता है और प्रसरण रहित संश्लिष्टावयवक को घन शब्द से कहते हैं। यहाँ प्रज्ञान शब्द प्रज्ञान जजन व्यापार परक है सुषुप्ति स्थानक जो भगवान् परमात्मा उनका व्यापार एतादृश ही होता है जो कि जीव का जो ज्ञान वह बाह्य अथवा आन्तर विषय में प्रसरणशील नहीं होता है। आत्मा का जो स्वरूप ज्ञान आनन्दादिक है तावन्मात्र से प्रवृत्त होता है। ज्ञान आत्मा का धर्म है संकोच विकासशील तथा प्रभा की तरह द्रव्य है यह बात एतदीय सिद्धान्त सिद्ध है इसलिये प्राज्ञ भगवान् विज्ञानघन कहलाते हैं। एवकार से इतर विषयक ज्ञानोत्पादन व्यापार रहितत्व का सूचन होता है। क्योंकि 'इतनी देर तक मैंने सुखपूर्वक शयन किया और कुछ नहीं समझा' इसप्रकार से सुप्तोत्थित पुरुष को

स्मरण होता है इसमें आनन्दात्मक जीव का स्वरूप काल और अज्ञान यह तीन पदार्थ इस ज्ञान में विषयीविधया प्रविष्ट है। इन पदार्थों में ही तदीय ज्ञान का प्रसार होता है अन्यत्र नहीं अतः प्रज्ञान जीव है क्योंकि एतादृश ज्ञान जनन व्यापारवान् होने से और प्राज्ञः प्रज्ञानघन कहलाते हैं। 'आनन्दमय है आनन्द की प्रचुरता विशिष्ट है अर्थात् परिपूर्णानन्द भगवान् श्रीरामजी प्राज्ञ हैं। **'हि'** शब्द आनन्दमयत्व की प्रसिद्धि का सूचक है अर्थात् भगवान् श्रीरामजी पूर्णानन्द हैं यह विषय शास्त्र में अति प्रसिद्ध है। **'आनन्दभुगिति'** यह प्राज्ञ भगवान् स्वयं आनन्द का उपभोग करते हैं तथा जीववर्ग को आनन्दलेश का भोग कराते हैं यह जो आनन्द है वह विषय संपर्क जनित नहीं है किन्तु स्वरूपानन्द है उस आनन्द की प्रचुरता होने से तादृश आनन्दयुक्तत्व प्राज्ञ में उचित है **'चेतोमुखः'** इति। यहाँ चेतस् शब्द अहंकार अथवा चित्त का वाचक नहीं है किन्तु ज्ञान का वाचक है। चेतस् अर्थात् स्वकीय धर्मभूत जो ज्ञान वही आनन्द काल और अज्ञान की उपलब्धि का साधन है जिसका एतादृश है यह प्राज्ञ वैश्वानर तैजस के समान एकोन विंशति मुख वाले नहीं हैं किन्तु स्वकीय चैतन्य द्वारा जीव को आनन्द का भोग

कराते हैं तथा स्वयम् उसका उपभोग करते हैं। **'प्राज्ञः'** इति। विषयान्तर से समुत् कृष्ट स्वकीय स्वरूपात्मक आनन्द को सर्वप्रकार से जानता है उसे प्राज्ञ कहते हैं। पक्षान्तर में ज्ञा धातु णिजर्थ व्यापार घटित है। यह तृतीय पाद है अर्थात् समस्त प्रणव से प्रतिपाद्य प्रणव का अवयवरूप जो मकार तत्प्रतिपाद्य अंशभूत तृतीय स्वरूप यह प्राज्ञ है।३।

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाऽप्ययौ हि भूतानाम् ॥४॥

तीन पाद के रूपमें वर्णित यह सर्वेश्वर सभी का स्वामी है यह तीन पाद वाला आत्मा सभी को यथार्थ रूपसे जानने वाला है एवं यह सभी के अन्तरात्मा के रूपमें नियन्त्रक है तथा यही परब्रह्म श्रीरामजी सब संसार का कारण हैं क्योंकि यही श्रीरामजी समस्तभूत वर्गों का उत्पादक पालक तथा संहारक हैं ॥४॥

एष यदीयं पादत्रयं वर्णितम्। वर्णनीयश्चाग्रेऽव शिष्टश्चतुर्थः पादः स एष चतुष्पात् समस्तप्रणवप्रति पाद्यः परमात्मा। सर्वेश्वरः सर्वेषां चिदिचिद्वस्तूना मीश्वर ईशिता। एष सर्वज्ञः चतूरूपः परमात्मा य एष प्रकृतः स सर्वविषयकज्ञानवान्। एषोऽन्तर्यामी एष प्रकृत एव परमात्मा अन्तःस्थः सन् सर्वान् नियमय ति। अन्तरनुप्रवेशेन नियमनकर्ता सर्वेषामेतदतिरिक्तो

नास्तीत्यर्थः। एष योनिः सर्वस्य सर्वस्य योनिरुपदान कारणम्। एतेन सांख्यतार्किकसंमतौ प्रधानपरमाणू पादनतावादौ निरस्तौ भवतः। प्रभवाऽप्ययौ हि भूता नां हि यस्माद्धेतोरयं सर्वस्य योनिः तस्माद् भूतानां प्रभवश्चाप्ययश्चेति प्रभवाप्ययौ। प्रभवन्ति भूतानि यस्मादसौ प्रभवः। अप्येति यस्मिन्नित्यप्ययः। सर्वभू तोत्पत्तिप्रलयहेतुरयमेव चतुष्पात् परमात्मेतिभावः। प्रकृतस्य परमात्मनो महिमाऽयं चतुर्थपादनिरूपणात् प्रागेव वर्णितः साधकस्य श्रद्धातिशयोत्पादाय ॥४॥

एषः यह जो इस पादत्रय का वर्णन किया गया और जिसका चतुर्थ पाद आगे वर्णनीय है वह यह चतुःपाद समस्त प्रणव से प्रतिपादित परमात्मा परमपुरुष हैं। यह सर्वेश्वर हैं अर्थात् सब चिदचित् पदार्थ को नियन्त्रण करनेवाले जो यह चाररूप वाले परमात्मा जो कि पूर्व प्रक्रान्त हैं वह सर्वज्ञ सर्वविषयक ज्ञानवान् हैं। यह परमात्मा अन्तर्यामी हैं। यह प्रकृत परमात्मा अन्तस्थ हो करके सबको नियन्त्रित करते हैं अन्तः अनुप्रविष्ट होकर सबको नियन्त्रण करनेवाला परमेश्वरा तिरिक्त कोई नहीं है। यही सबके योनि उपादान कारण हैं। इस कथन से सांख्य तथा तार्किक संमत प्रधान पर माणु कारणतावाद का निराकरण होता है। जिसलिये यह

परमात्मा श्रीरामजी सबका उपादानकारण हैं इसलिये सभी भूतों का प्रभव अव्यय भी हैं, भूतसमूह जिससे उत्पन्न हो वह प्रभव कहलाता है। और ज़िसमें विलीय मान होवे उसे अप्यय कहते हैं। अर्थात् सभी भूतों की उत्पत्ति तथा प्रलय के कारण यही चतुष्पाद परमात्म परमपुरुष श्रीरामजी हैं। प्रकृत परमात्मा का यह महत्त्व चतुर्थ पाद के निरूपण करने से पहले ही वर्णित किया गया परमपुरुष में उपा सकों को श्रद्धातिशय का उत्पादन करने के लिये ॥४॥

नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्। अदृष्टमव्यवहार्य मग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमैकात्म्य प्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं च तुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥५॥

जो अन्तः स्वप्न का प्रकाशक नहीं है बहिः जाग्रत का प्रकाशक भी नहीं है इन दोनों का भी प्रकाशक नहीं है एवं सुषुप्ति समय का बोधक भी नहीं है तथैव मानस ध्येय पदार्थ का भी प्रदर्शक नहीं है और प्रज्ञा रहित भी नहीं है पर जो जीवों से देखा नहीं गया हो तथा व्यवहार में भी लाया नहीं गया हो सामान्यत ग्रहण में भी न आता हो तथा जो प्राकृतिक लक्षण रहित हो और अचिन्त्य हो बतलाने योग्य भी न हो एकमात्र पूर्ण आत्मज्ञान का सार जो सदा प्रपञ्च से रहित है

शान्त तथा कल्याणमय एवं अहंकारादि मिथ्या अध्यवसाय का निवारक है ऐसा परब्रह्म का चौथा पाद मानते हैं विश्व तैजस प्राज्ञ तथा तुरीय पाद वाला वह परब्रह्म श्रीरामजी हैं वेही सर्वेश्वर श्रीरामजी प्रयत्न पूर्वक साधकों से जानने योग्य हैं ॥५॥

प्रकृतस्य परमात्मनो महिमानमुपवर्ण्य सम्प्रति तदीयं तुरीयं पादं वर्णयति-नान्तरिति । नान्तःप्रज्ञं स्वप्नकालीनसूक्ष्मार्थरूपान्तरपदार्थप्रज्ञापनं हि व्यापारस्तैजसस्य पूर्वमुक्तः तुरीये स नास्तीत्यर्थः । अन्तःप्रज्ञमित्यादीनि सर्वाणि द्वितीयान्तपदानि चतुर्थमित्यस्य विशेषणीभूतानि । विग्रहस्तु पूर्ववदिहाप्यनुसन्धेयः । न वहिःप्रज्ञं बाह्यार्थप्रज्ञापनव्यपारो वैश्वानरो न तादृशस्तुरीयः तद्व्यापारस्यात्राभावादित्यर्थः । नोभयतः प्रज्ञं जाग्रत्स्वप्नयोरन्तरालेऽपि काचित् दशाऽनुभूतये सर्वैर्यत्र बाह्यमपि पदार्थं शब्दादिकमनुभवति शयानः स्वाप्नांश्च पदार्थान् पश्यति स व्यापारो न केलस्य वैश्वानरस्य तैजसस्य वा किन्त्वंशत उभयस्य । सोऽपि व्यापारः तुरीये नास्ति । विग्रहस्तु उभयतो बाह्यान्तरांश्च पदार्थान् प्रजानाति प्रज्ञापयति च स उभयतः प्रज्ञः तद्भिन्नोऽयं तुरीयः । न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं प्राज्ञो हि भगवान् प्रज्ञानघनः प्रज्ञश्च भवति घनीभूतप्रज्ञानजननव्यापारवत्वात् प्रकृष्टस्यात्मसुखस्य प्रज्ञापनव्यापारवत्वाच्च तुरीयस्तु न तादृशः तदीयव्यापारद्वयस्य

तुरीयेऽभावादत एव नायं प्रज्ञानघनो न वा प्रज्ञः । प्राज्ञवैलक्षण्यं पदद्वयेन तुरीयस्य प्रदर्शितम् । किं तर्ह्ययं तुरीयः सर्वव्यापाररहित एवेत्याशंकायामाह-न प्रज्ञं न प्रजानाति प्रज्ञापयति च सोऽप्रज्ञ इत्युच्यंते । जड इत्येतत् । न तादृशोऽयं तुरीयः किन्तु स्वयं चैतन्य विशिष्टः सन् मुक्तात्मभ्यः सर्वज्ञानं ददातीत्यस्य व्यापारः । स्वयञ्चायं सर्वज्ञ एवेत्यर्थः । 'न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोप' इति श्रुतेः । अदृष्टं ज्ञानेन्द्रियाऽविषयममुक्तैरदृश्यत्वात् । मुक्तात्मदृश्यन्त्वस्यास्त्येवेतिभावः । अत एव अव्यवहार्य यो हि दृष्टो न भवति स कथं व्यवहरणीयः । अर्थक्रियारूपस्य व्यवहारस्य दृष्टेष्वेव सम्भवादितिभावः । अग्राह्यं कर्मेन्द्रियागोचरं मनसोऽप्यगोचरमिति वा । अलक्षणं लक्ष्यते गम्यते विषय इन्द्रियासन्निकृष्टोऽप्यनेनेति लक्षणमनुमापकं लिङ्गं तत् जाग्रदादिप्रवृत्तिरूपमस्ति वैश्वानरादे रूपत्रयस्य तुरीयस्य तु तादृशं किमपि लिङ्गं नास्ति येन तदनुमितिः शक्यसंभवा स्यादतोऽयमलक्षण इत्युच्यते । अचिन्त्यमत एवायं न चिन्तयितुं योग्यः । इन्द्रियगोचरत्वेऽनुमतिगोचरत्वे व्यवहार्यत्वे वा वस्तुनो ध्यानापरपर्याया चिन्ता सम्भवति । नायं तथेत्यचिन्त्य एवेतिभावः । अव्यपदेश्यं व्यपदेष्टुं शब्दैः प्रतिपादयितुं

योग्यो व्यपदेश्यः तद्भिन्नोऽव्यपदेश्यः तुरीयस्तु शब्दे नापि व्यपदेशं नार्हति अयमीहश इति । नन्वेवं तुरीय अप्रामाणिक एव भवेद् अदृष्टादारभ्याव्यपदेश्यान्त विशेषणविशिष्टस्य केनापि प्रमाणेनावगन्तुमशक्यत्वा दित्याशङ्कायामाह ऐकात्म्यप्रत्ययसारम् । अतति आप्नोति वा सर्वं यः स आत्मा । सर्वव्यापी परि पूर्णश्च यः स आत्मेति तदर्थः । एकश्चासौ आत्मा एकात्मा । ईदृशः परिपूर्णः सर्वव्यापी पदार्थ एक एवेतिभावः । एकात्मा एव ऐकात्म्यम् । स्वार्थे ष्यञ् । तस्य प्रत्ययः श्रुतिजन्यं ज्ञानम् 'आत्मेत्येवोपासीत' 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्त रात्मा' इत्यादिश्रुतिनिकरजन्य एकात्म्यप्रत्यय इत्येतत् । अयमेव सारः प्रमापको यस्य स एकात्म्यप्रत्ययसारः । सृ गतौ इति धातोर्ज्ञानार्थत्वाश्रयणात् । श्रुतिभ्यो जा यमानः परिपूर्णः सर्वव्यापक आत्मा एक एवेति प्रत्यय एवात्र तुरीये प्रमाणमतो नायमप्रमाणिक ईदृशविशे षणविशिष्टोऽपीतिभावः । प्रपञ्चमुपशमयतीति प्र- पञ्चोपशमस्तम् । जीवस्य सर्वविधबन्धरूपः प्रपञ्चो ऽस्य तुरीयस्य परिज्ञाने विनश्यतीति तुरीयः प्रपञ्चो पशम उच्यत इतिभावः । शान्तमूर्तिषट्करहितम् । रागद्वेषादिगन्धविहीनमित्येतत् । शिवम् दुःखसम्पर्क

शून्यत्वात् । अनपाय्यानन्दस्वरूपत्वाच्चायं तुरीयः शिव उच्यत इत्यर्थः । अद्वैतं चिदचिद्विशिष्टोऽयमेक एव नास्य समोऽधिको वा द्वितीयः कश्चिदस्तीति तुरीयोऽद्वैत इतीर्यते । 'न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यत' इतिश्रुतेः । चिदचिद्विशिष्टस्य परमात्मन एकस्यैव तत्वस्य सिद्धान्तसिद्धत्वादितिभावः । चतुर्थः मन्यन्ते । पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टं तुरीयपादं समग्रप्रणवप्रतिपाद्य स्य स्वरूपं मन्यन्त औपनिषद्रहस्यवेत्तार इति शेषः । स आत्मा स विज्ञेयो यश्चतूरूपतया वर्णितः स एव आत्मा सर्वेषां चिदचितामतः परमात्मभूतः स एव विज्ञेयो विशेषेण यथाधिकारं विविधरूपतया समु पदिष्टो ज्ञेयः साक्षात्कार्य उपासनाद्वारा । यत्साक्षात् कारेण सर्वबन्धविनिर्मुक्तिर्भवति मुमुक्षूणामुपासका नामित्यर्थः ॥५॥

卐 इत्यथर्ववेदीयमाण्डूक्योपनिषदो भगवद्रामानन्दाचार्य प्रणीतानन्दभाष्ये द्वितीयः खण्डः ॥२॥ 卐

प्रकृत जो परमात्मा है उसकी महिमा अर्थात् तदीय महत्व का वर्णन करके संप्रति उस परमात्मा का जो चतुर्थपादः उसका वर्णन करते हैं 'नान्तः प्रज्ञमित्यादि' नहीं है अन्तः प्रज्ञा जिसे तादृश चतुर्थपाद है अर्थात् स्वप्नकालिक सूक्ष्म पदार्थरूप जो आन्तर पदार्थ तादृशार्थ विषयक प्रज्ञापन व्यापार तैजस का है ऐसा पहले कहा गया है किन्तु तादृश

प्रज्ञान व्यापार तुरीय में नहीं है । **'अन्तःप्रज्ञम्'** इत्यादिक सभी द्वितीयान्तपद **'मन्त्रघटक'** चतुर्थम् इस पद का विशेषण है । विग्रह इसमें पूर्ववत् ही समझना चाहिये । **'न बहिःप्रज्ञम्'** बाह्य अर्थ विषयक प्रज्ञापन व्यापार वैश्वानर का है किन्तु एतादृश तुरीय नहीं है बाह्यार्थ प्रज्ञापन व्यापार का अभाव तुरीय में है । **'नोभयतः प्रज्ञम्'** जाग्रत् तथा स्वप्न के अन्तराल मध्य में कोई एक दशा है जिसके अनुभव के लिये जिस दशा में प्रायः सभी व्यक्ति बाह्य पदार्थ का शब्दादिक का अनुभव करता है और सोनेवाला आदमी स्वाप्न पदार्थ का भी अनुभव करता है तादृश प्रज्ञापन व्यापार न केवल वैश्वानर का है न वा केवल तैजस का है किन्तु अंशतः दोनों का है । एतादृश मिलित व्यापार भी तुरीय पाद में नहीं है । **'नोभयतः प्रज्ञमिति'** जो बाह्य तथा आन्तर पदार्थ को जानता है देखता है उसे उभयतः प्रज्ञ कहते हैं उससे भिन्न तुरीय है । **'न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञम्'** प्राज्ञ भगवान् प्रज्ञानघन तथा प्रज्ञ होते हैं घनीभूत प्रज्ञान जनन व्यापारवान् होने से तथा प्रकृष्ट आत्मसुख प्रज्ञापन व्यापारवान् होने से तुरीय ऐसा नहीं है उपरोक्त व्यापार द्वय तुरीय में नहीं है इसलिये तुरीय न प्रज्ञानघन है न वा प्रज्ञ है । इस पद द्वय से प्राज्ञ की अपेक्षया वैलक्षण्य तुरीय में बतलाया गया है । तो क्या यह तुरीय सर्वव्यापार रहित ही है ? इस शंका के उत्तर में कहते हैं **'न प्रज्ञम्'** इति । जो नहीं जाने न वा प्रज्ञापित करावे वह अप्रज्ञ अर्थात् जड कहलाता है परन्तु

तुरीय एतादृश नहीं है किन्तु स्वयं चेतना विशिष्ट होते हुए मुक्त आत्माओं को सर्वज्ञान देते हैं यही इनका व्यापार है स्वयं तो यह सर्वज्ञ ही हैं। श्रुति कहती है कि 'विज्ञाता का जो विज्ञान है उसका विपरिलोप-विनाश नहीं होता है'। **'अदृष्टमिति'** ज्ञानेन्द्रिय का अविषय है अर्थात् अमुक्त पुरुष से दृश्य नहीं है मुक्तात्मा से दृश्य होते ही हैं। अत एव यह तृतीय अव्यवहार है अर्थात् वाग् व्यवहार का विषय नहीं है क्योंकि जो दृष्ट नहीं होता है वह व्यवहार का विषय किस तरह से हो सकता है अर्थ क्रियारूप जो व्यवहार है वह दृष्ट वस्तु में ही होता है अदृष्ट में नहीं होता है। तथा अग्राह्य है कर्मेन्द्रिय का अविषय है अथवा अविषय है मन का। तथा यह तुरीय अलक्षण है। इन्द्रियासन्निकृष्ट पदार्थ जाना जाय जिसके द्वारा उसे कहते हैं लक्षण अनुमापक लिङ्ग तादृश लिंग जाग्रदादि प्रवृत्तिरूप लिंग वैश्वानरादित्रय में है किन्तु तुरीय का ज्ञापक लिंग कोई नहीं है जिससे कि यह अनुमिति का विषय हो? इसलिये तुरीय अलक्षण अनुमापक लिंग रहित कहलाते हैं। अत एव यह तुरीय अचिन्त्य हैं चिन्ता का अविषय है इन्द्रिय विषय अथवा अनुमिति विषय अथवा व्यवहार विषयक पदार्थ का ध्यानापर पर्यायरूप चिन्तन संभवित है परन्तु यह तुरीय एतादृश नहीं है इसलिये यह तुरीय अचिन्त्य हैं। शब्द द्वारा प्रतिपादन करने के योग्य पदार्थ को व्यपदेश्य कहते हैं और एतत् भिन्न को अव्यपदेश्य कहते हैं तुरीय आत्मा तो शब्द द्वारा प्रतिपादन करने के

योग्य नहीं है क्योंकि **'यतो वाचो निवर्तन्ते'** ऐसा श्रुति कहती है। प्रश्न-तब तो तुरीय अप्रमाणिक होंगे क्योंकि अदृष्टत्व विशेषण से लेकर अव्ययदेश्यान्त विशेषण विशिष्ट पदार्थ को तो किसी भी प्रमाण से नहीं जाना जा सकता है तब तो यह तुरीय शश विषाणवत् अप्रामाणिक हो गया इस शंका के उत्तर में कहते हैं **'ऐकात्म्यप्रत्ययसारमिति'** अतति सतत सर्वत्र जो चले अथवा जो सब पदार्थ को प्राप्त करे उसे कहते हैं आत्मा अर्थात् सर्वव्यापक परिपूर्ण जो हो वह है आत्मा। एक जो आत्मा वह हुआ एकात्मा अर्थात् ईदृश परिपूर्ण सर्वव्यापी पदार्थ एक ही है। एकात्मा को ही ऐकात्म्य कहते हैं स्वार्थिक ष्यञ् प्रत्यय है उस एकात्मा का प्रत्यय श्रुतिजन्य तद्विषयक ज्ञान। अर्थात् 'आत्मा की उपासना करो' एक ही देव प्रत्येक भूतों में निहित हैं सर्वव्यापी हैं तथा सर्वभूतों की अन्तरात्मा हैं इत्यादि श्रुति समुदाय से जायमान ज्ञान को ही एकात्म्य प्रत्यय कहते हैं। यही प्रत्ययसार अर्थात् प्रमापक है जिसका उसे कहते हैं ऐकात्म्य प्रत्ययसार। सृ गतौ धातु है वह यद्यपि गत्यर्थक है तथापि यहाँ उसे ज्ञानार्थक माना गया है। परिपूर्ण सर्वव्यापक आत्मा एक ही है ऐतादृश श्रुति द्वारा जायमान ज्ञान ही इस तुरीय आत्मा में प्रमाण है इसलिये यथोक्त विशेषण विशिष्ट भी तुरीय अप्रामाणिक नहीं है किन्तु शब्दप्रमाणगम्य है। **प्रपञ्चोपशममिति** प्रपञ्च संसार को उपशमित जो करे उसे कहते हैं प्रपञ्चोपशम एतादृश तुरीय है। अर्थात् जीव का

सर्वप्रकारक बन्धनात्मक जो प्रपञ्च है वह इस तुरीय के ज्ञान होने से विनष्ट हो जाता है अतः तुरीय को प्रपञ्चोपशमरूप कहते हैं। यह तुरीय शान्त है ऊर्मि षट्क से रहित हैं अर्थात् रागद्वेषादि-बन्ध विहीन हैं। तथा वह तुरीय शिव है जिसलिये दुःख सम्बन्ध से रहित है और अविनाशी आनन्द स्वरूप है। 'अद्वैतरूप हैं तुरीय यद्यपि यह चिदचिद्विशिष्ट हैं तथापि यह एक है इसके समान अथवा इससे अधिक द्वितीय कोई नहीं है इसलिये तुरीय अद्वैत कहलाते हैं। **'न तत्समश्चाभ्यधिकश्च'** इत्यादि श्रुत्यन्तर भी प्रतिपादन करता है। और चिदचिद्विशिष्ट परमात्मा तत्व एक ही है ऐसा श्रीरामानन्द दर्शन सिद्धान्त सिद्ध वस्तु है ऐसा भाव है। **'चतुर्थमन्यन्ते'** पूर्वोक्तविशेषण विशिष्ट यह चतुर्थपाद समस्त प्रणव प्रतिपाद्य परमात्मा का स्वरूप है ऐसा उपनिषत् के रहस्य जानने वाले कहते हैं। वह आत्मा है वह विज्ञेय हैं जो कि चारपाद रूपसे वर्णित हुए हैं वही सब चिदचित् के आत्मा परमात्मा रूप हैं वही विज्ञेय हैं यथाधिकार अनेक रूपसें समुपदिश्यमान हैं ऐसा जानना चाहिये। उपासनां द्वारा साक्षात्कार करने के योग्य हैं जिसका साक्षात्कार होने से मुमुक्षु उपासक का सर्व प्रकारक बन्धन का अभाव हो जाता है ॥५॥

卐 इति माण्डूक्योपनिषदः श्रीरामानन्दभाष्यस्यप्रकाशे द्वितीयः खण्डः 卐

卐 अथ तृतीयः खण्डः 卐

सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ॥१॥

ओंकार द्वारा कथित वह चार पाद वाला यह आत्मा सर्वदा नाशरहित है तथा अधिक मात्रा वाला है वैश्वानर तैजस प्राज्ञ एवं तुरीय पाद ही मात्राएं हैं तथा अकार 'अ' उकर 'उ' एवं मकर 'म' ये तीन मात्रायें पाद हैं ॥१॥

ओंकारप्रतिपाद्यस्यात्मनः चत्वारि रूपाणि प्रदर्शितानि द्वितीये खण्डे सम्प्रति तेषां स्वरूपाणां प्रतिपादक ओंकारस्य कस्कोंऽश इति विविनक्तिसोऽयमिति । सः चतुष्पात्त्वेन वर्णितोयमात्मा प्रकृतः परमात्मेत्यर्थः । अध्यक्षरमक्षरं वर्णस्वरूपमधिकृत्येत्यध्यक्षरमक्षर स्वरूपे ओङ्कार ओङ्काररूपः । वाच्यवाचकयोरभेदाध्यवसायादात्मन ओङ्काररूपतेति तात्पर्यम् । ओङ्काररूपेणाक्षरेण समुच्यमानत्वादयमात्मा ओङ्कार एवेति भावार्थः । अधिमात्रं मात्रामधिकृत्येत्यधिमात्रम् । मात्रारूपेण तस्य चतुष्पादरूपस्यात्मनः पादावर्तन्त इत्यर्थः । आत्मनो ये पादा त ओङ्कारस्य मात्रा इति कथमित्याशङ्कायामाह-पादा मात्रा मात्राश्च पादा इति । य आत्मनः पादा विश्वादयः त एव ओङ्कारस्य मात्रा

याश्चोङ्कारस्य मात्राः ता एवात्मनः पादाः प्रणव मात्राणामेवात्मनः पादाभिधायकत्वादभिधानाभिधेय योश्चाभेदाध्यवसायात् । कास्ताः प्रणवस्य मात्रा या आत्मनः पादान् विश्वादीनभिदधतीत्याशंकायामाह–अकार उकारो मकार **इति योऽयमकार उकारो मकारश्च प्रणवावयवा येषां सन्धौ प्रणवरूपनिष्पत्तिर्भवति** 'ओमि'ति **ते एव मात्रा इत्युच्यन्ते तासामेवात्मनः पादाभिधायकत्वात् पादरूपता भवति पादानामात्मांशत्वं मात्राणाञ्च प्रणवांशत्वमित्यंशत्वरूपसामान्यान्मात्रासु पादत्वमितिभावः ॥१॥**

ओंकार से प्रतिपाद्य जो परमात्मा उसके चाररूप का प्रदर्शन कराया गया द्वितीय खण्ड में संप्रति उन स्वरूपों का प्रतिपादक ओंकार का कौन कौन अंश है उसका विवेचन करते हैं **'सोयमात्मा'** इत्यादि । जो परमात्मा चतुष्पादरूप से वर्णित हुए हैं वह यह प्रकृत परमात्मा । वह अध्यक्षर अक्षर वर्णस्वरूप को अधिकृत करके जो हो एतादृश अध्यक्षर परमात्मा अक्षर स्वरूप अर्थात् ओंकाररूप हैं क्योंकि वाच्य वाचक में अभेदाध्यवसाय होने से परमात्मा में ओंकाररूपत्व है ऐसा तात्पर्य है । भावार्थ यह है कि ओंकार लक्षण अक्षर द्वारा वाच्य होने से यह आत्मा ओंकाररूप ही है । मात्रा को

अधिकृत करके होनेवाले को अधिमात्र कहते हैं। मात्रारूप से उस चतुष्पाद आत्मा का पाद है। आत्मा का जो पाद है वही ओंकार की मात्रा है वह किस तरह है इस शंका के उत्तर में कहते हैं-**'पादामांगामात्राश्च पादा'** इति। जो आत्मा का पाद है विश्व तैजस प्रभृतिक वही ओंकार की मात्रा अकारादिक है वही आत्मा का पाद विश्वादिक है प्रणव का जो है वही आत्मा के पाद का अभिधायक वाचक है। कौन वे प्रणव की मात्रा हैं जिसे आत्मा का पाद विश्वादिक कहते हैं इस शंका के उत्तर में कहते हैं-**'अकार'** इत्यादि जो यह अकार उकार मकार लक्षण प्रणव का अवयव है जिसकी सन्धि करने पर **ओम्** की निष्पत्ति होती है। **'ओम्'** इस रूपसे उसी को मात्रा कहते हैं। वे ही आत्मा के पाद वाचक हैं। पादरूप कहलाते हैं। पाद आत्मा का अंश है और मात्रा प्रणव का अंश है इस प्रकार से अंशत्व लक्षण समानता होने से मात्रा में पादत्व घटता है ॥१॥

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्रा आप्तेरादिमत्वाद्वाऽऽप्नोति ह वै सर्वान् कामानादिंश्च भवति य एवं वेद ॥२॥

ओंकार की प्रथम मात्र अकार जीवों से भोग्य विषयों को उपलब्ध कराने के कारण एवं आदि वाला होने से जागरित स्थान वैश्वानर नामक प्रथम पाद है जो साधक अकार से वाच्य वैश्वानर को जानता है वह निश्चय ही अपने योग्य सभी कामनाओं को पा लेता है एवं सबका प्रधान भी होता है ॥२॥

सामान्यतो मात्रासु पादाभिधायकत्वात् पादत्व मुक्तं सम्प्रति विशिष्य कस्यां मात्रायां किम्पादत्वमिति वदति-जागरितेति । जागरितस्थानो दक्षिणचक्षुरग्रभा गवर्ती वैश्वानर एतदाख्यः समग्रप्रणवप्रतिपाद्यस्या त्मनः प्रथमपादभूतो यः स प्रणवस्य प्रथमा मात्रा अकारः । अकारोकारमकारेषु प्रथमपाठादकारस्य प्रथ मत्वं तैजसप्राज्ञापेक्षया च विश्वस्य प्रथमत्वम् । अका रो हि विश्वस्य वाचकः तस्मादकारे विश्वत्वमुक्तमिति भावः । वैश्वानरस्य अकारस्य साधारणधर्मे अकारे वैश्वानरत्वाप्तिनिमित्तं दर्शयति-वैश्वानरोपासनायाम-कारस्याऽऽलम्बनत्वं सम्पादयितुमाप्तेरिति । आप्तिर्व्या पनम् । व्याप्नोति सर्वां वाचमकारः 'अकारो वै सर्वा वाग्' इतिश्रुतेः । वैश्वानरोऽपि व्याप्नोति सर्वमर्थजातं द्युलोकादीनां तदीयमूर्धत्वादिश्रुतेः । एतेन व्यापकत्वं समानो धर्म उभयोः कथितः । आदिमत्वाद् आदिः प्रथमं स्थानम् । तद् यस्याऽस्तीत्यादिमान् अकारस्यो कारमकारापेक्षया प्रणवपाठक्रमेण प्रथमस्थानवत्वा

दादिमत्वम् । विश्वस्य तु तैजसप्राज्ञापेक्षया प्रथमस्थाने वर्तमानत्वादादिमत्वम् । अतो द्वयोः सामान्यो धर्मो द्वितीय आरोपनिमित्तभूत उक्तः । अनेन धर्मद्वयेनो भयोः सादृश्यादकारे विश्वत्वमारोपितं भवति तथा चाकारालम्बनेन विश्वरूपं परमात्मनः स्वरूपमुपास नीयमिति फलति । एवमुपासनायां यत्फलमुपासकस्य भवति तन्निर्दिशति-आप्नोतीत्यादिना । य उपासक एवं वेद अकारालम्बनमुपासनं भगवतो वैश्वनरस्य कुरुते स सर्वान् कामानाप्नोति । आदिश्च भवति प्रथमो भव ति । महतां सम्माननीयोऽयं भवति लोके इत्यर्थः ॥२॥

सामान्य रूपसे मात्रा में पादवाचकता होने से पादरूपता का कथन किया गया है, प्रथम मन्त्र में संप्रति किस मात्रा में किस पाद की समानता है इसमें कहते हैं-**'जागरितस्थानः'** इत्यादि । जागरित स्थान दक्षिण नेत्र के अग्रभाग में रहनेवाला वैश्वानर एतन्नामक समस्त प्रणव प्रतिपाद्य आत्मा के प्रथम पादरूप जो है वह प्रणव का प्रथम मात्रारूप अकार है । अकार उकार मकार में प्रथम पाठ होने से अकार में प्रथमता है तैजस प्राज्ञ की अपेक्षा से विश्व को प्रथमत्व है । अकार विश्व का वाचक है अतः उकार मात्रा में विश्वत्व का कथन किया गया है । वैश्वानररूप अकार के साधारण धर्म

अकार में वैश्वानरत्व की आप्ति में निमित्त को बतलाते हैं। वैश्वानर की उपासना में अकार को आलम्बनत्व का संपादन करने के लिये कहते हैं **'आप्तेरित्यादि'** आप्ति का अर्थ है व्याप्त करना सभी वाणी को अकार व्याप्त करता है क्योंकि श्रुति कहती है 'अकार ही सर्ववाणीरूप है' वैश्वानर भी समस्त अर्थजात को व्याप्त करता है द्युलोकादि सब वैश्वानर का मस्तकरूप है ऐसा कहा गया है । इससे अकार तथा वैश्वानर उभय का व्यापकत्व समान धर्म कहा गया । **'आदिमत्वादिति'** आदि प्रथम स्थान वह है जिसका उसको कहते हैं आदिमान् । अकार को उकार मकार की अपेक्षा से प्रथम पाठ क्रम से प्रथम स्थानवान् होने से आदिमत्व है । विश्व तैजस प्राज्ञ की अपेक्षा से प्रथम स्थान में रहता है अतः वह आदिमान् है । अतः इन दोनों को सामान्य धर्म द्वितीय आरोप में निमित्त कहा गया है । इस धर्मद्वय से दोनों के सादृश्य होने से अकार में विश्वत्व का आरोपण किया जाता है तथा अकार के आलम्बन से विश्वरूप परमात्मा का स्वरूप उपासनीय है ऐसा फलित होता है । एतादृश उपासना में उपासक को जो फल मिलता है उसका निर्देश करते हैं **'आप्नोतीत्यादि'** जो उपासक इस तरह जानता है अर्थात् भगवान् वैश्वानर का अकारालम्बन

उपासना करता है वह उपासक सब काम-कमनीय पदार्थ को प्राप्त करता है। और आदि होता है यानी लोक में संमानपात्रता को प्राप्त होता है ॥२॥

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसंततिं समानश्च भवति नाऽस्या ब्रह्मवित् कुले भवति य एवं वेद ॥३॥

ओंकार की द्वितीय मात्रा उकार है वह अकार से उत्कृष्ट है अ एवं म के वीच में होने से वह स्वप्न स्थान तैजस नाम वाला द्वितीय पाद है जो साधक उकार वाच्य तैजस को जानता है वही ज्ञान की परम्परा को बढाकर आत्मा का उद्धार करता है एवं मोक्ष प्राप्त सभी जीवों के समान होता है और इसके कुल में ब्रह्मज्ञान रहित सन्तान नहीं होती है ॥३॥

स्वप्नस्थानस्तैजसो यः समस्तप्रणवप्रतिपाद्यस्य भगवतो द्वितीयोंऽशः स प्रणवस्य द्वितीया मात्रा। द्वितीयां मात्रामालम्ब्य तैजसोपासना विधेयेत्यर्थः। केयं द्वितीया मात्रेत्यत्राह-उकार इति। उकार एव प्रणवस्य द्वितीयामात्रेत्यर्थः। तैजसोपासना कथमुकारमालम्ब्य कार्येति शंकानिराकरणाय धर्मद्वयसाम्यरूपं निमित्तं दर्शयति-उत्कर्षादिति। उत्कर्षादुत्कृष्टत्वात्। उत्कृष्टत्वं हि तैजसस्य विश्वापेक्षयाऽस्ति। जीवगतदुष्परित्यज्य

देहाभिमानपरित्यागहेतुत्वात् । विश्वो जीवगतं देहाभिमानं न त्याजयतीति विशेषः । अकारापेक्षयोकारोऽपि भवत्युत्कृष्टो देहाभिमानपरित्यागहेतुतैजसवाचकत्वादत उत्कर्षो धर्मः समानो द्वयोरस्ति । उभयत्वाद्वा उभयत्वमपि द्वयोः समानो धर्मः । उभयत्वञ्चोभयसम्बन्धित्वम् । अस्ति च तत् तैजसस्य विश्वप्राज्ञयोर्द्वयोर्मध्य-वर्तित्वात् । उकारोऽपि प्रणवावयवाकारमकारमध्यवर्तित्वादुभयसम्बन्धी भवत्येवेति धर्मद्वयं समानमुकारालम्बनतैजसोपासनायां निमित्तमस्तीतिभावः । एवमुकारालम्बनमुपासनं तैजसस्य भगवतो यः करोति तस्य किं फलं भवतीति दर्शयति-उत्कर्षतीत्यादिना । य उपासक एवं वेद उत्कृष्टत्वोभयत्वनिमित्तकमुकारालम्बनं तैजसोपासनं कुरुते स ज्ञानसन्ततिं ज्ञानधारामुत्कर्षति वर्धयति शिष्यप्रशिष्यपरम्पराऽनुवर्तनात् । समानश्च भवति समानो मानसहितो भवति ब्रह्मज्ञानिनां मध्ये । शत्रुमित्रयोर्वा समानस्तुल्यो भवति । अस्य तैजसोपासकस्य ब्रह्मज्ञानिनः कुले कश्चिदपि पुत्रपौत्रादिरब्रह्मविद् ब्रह्मज्ञानविधुरो न भवति । जनकस्येवास्याऽपि कुले सन्तानपरम्परा ब्रह्मज्ञानविशिष्टैव जायत इत्यर्थः ।।३।।

स्वप्नस्थान वाला तैजस जो कि समस्त प्रणव

प्रतिपाद्य भगवान् का द्वितीय अंश है वह प्रणव की द्वितीय मात्रा है । अर्थात् द्वितीय मात्रा का आलम्बन करके तैजस की उपासना करनी चाहिये । कौन यह द्वितीय मात्रा है उसमें कहते हैं **'उकार'** इति उकार ही प्रणव की द्वितीय मात्रा है । उकार लक्षण द्वितीय मात्रा को आलम्बन बना करके किस तरह तैजस की उपासना होगी इस शंका का निरास करने के लिये धर्मद्वय की समानतारूप निमित्त को बतलाते हैं **'उत्कर्षादिति'** उत्कृष्टता दोनों में है विश्व की अपेक्षा से तैजस में उत्कृष्टता है जीवगत दुःपरित्यज जो देहाभिमान उसे परित्याग में कारण है विश्व जो है वह जीवगत देहाभिमान को नहीं त्याग कराता है पर यह तैजस देहाभिमान का त्याग में हेतु होता है यही उत्कृष्टत्व है । इसी तरह अकार की अपेक्षा से उकार उत्कृष्ट होता है क्योंकि देहाभिमान परित्याग का कारण जो तैजस तादृश तैजस का उकार वाचक है । अतः उत्कर्षतारूप धर्म तैजस तथा उकार में समान है । अथवा उभयत्व भी दोनों का तैजस उकार का समानधर्म है-उभयत्व उभय सम्बन्धीता रूप है । यह उभय सम्बन्धित्व तैजस में है क्योंकि तैजस विश्व तथा प्राज्ञ इन दोनों के मध्य में रहनेवाला है। उकार भी प्रणव के अवयव अकार तथा मकार के

मध्यवर्ती है अतः उकार भी उभय सम्बन्धी है। इस प्रकार उत्कृष्टत्व तथा उभय सम्बन्धित्वरूप धर्मद्वय समान है उकारालम्बन तैजसोपासना में निमित्त होता है। इस प्रकार से तैजस भगवान् का उकारालम्बन उपासना जो करता है तादृश उपासक को क्या फल मिलता है इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-**'उत्कर्षति ह वै'** इत्यादि। जो उपासक इस तरह से जानता है अर्थात् उत्कृष्टत्व तथा उभयत्व निमित्तक उकारालम्बन तैजस की उपासना का संपादन करता है वह उपासक ज्ञान संतति ज्ञानधारा को शिष्य प्रशिष्य में अनुवर्तन द्वारा बढाता है। और समान अर्थात् संमान से युक्त होता है ब्रह्मज्ञानियों में। अथवा शत्रु मित्र उभय के मध्य में समान तुल्य होता है। इस तैजसोपासक ब्रह्मज्ञानी के कुल में कोई भी पुत्र पौत्रादिक ब्रह्मज्ञान से रहित नहीं होता है जिस तरह राजा जनक के कुल में कोई भी ब्रह्मज्ञानहीन नहीं होता था उसी तरह तैजसोपासक के कुल में ब्रह्मज्ञान रहित नहीं होता है ॥३॥

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वामिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ॥४॥

ओंकार की तृतीय मात्रा मकार है वृत्तिज्ञान के लय कराने से या

स्व आत्मा में जीवात्मा के मिल जाने से। सुषुप्तिस्थान वाला प्राज्ञ नाम वाला तृतीय पाद है। जो साधक इसप्रकार मकार से वाच्य प्राज्ञ को जानता है वह परिदृश्यमान सब संसार को अपने अन्दर ही पा लेता है तथा दुःखदायी तत्वों का नाशक होता है॥४॥

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो यो भगवतः समस्तप्रणवप्रतिपाद्यस्य तृतीयोंऽशः स प्रणवस्य तृतीया मात्रा तृतीयमात्रायामालम्बनीभूतायां भगवतः प्राज्ञस्योपासनं विधेयमित्यर्थः। कासौ तृतीया मात्रेत्यात्राह मकार इति। **मकार एव प्रणवस्य तृतीया मात्रा यः प्राज्ञोपासनायामलम्बनीय इतिभावः। मकारस्य प्राज्ञोपासनालम्बनतायां निमित्तद्वयमाह**-मितेरपीतेर्वेति। **मितिर्मानम्। प्राज्ञो विश्वतैजसौ सुषुप्तिदशायां स्वतादात्म्यापन्नौ करोति तस्मान्मिनोतीत्युच्यते। तस्मान्मितिः प्राज्ञाधर्मः। मकारोऽपिझटित्यौमित्यस्योच्चारणकालेऽकारोकारौ स्वतादात्म्यापन्नाविव करोतीति मिनोतीत्युच्युतेऽतो मितिर्मकारस्यापि धर्मः। एवं मितिरपि द्वयोर्धर्मः। प्राज्ञः सुषुप्तिदशायां जाग्रत्स्वाप्नपदार्थानामप्ययं कुरुते। मकारोऽपि प्रणवोच्चारणे मकारोच्चारणकालेऽकारोकारयोरप्ययं कुरुते। अप्ययोऽत्र नाशः। तस्मादपीतिरपि द्वयोर्धर्मः। तत्साम्यान्मकारस्य प्राज्ञोपासनालम्बनत्वमितिभावः। एतद्धर्मद्वयनिमित्तेन मकारालम्बनकप्राज्ञोपासनाकर्तुः फलमुपदर्शयति**-मिनोति ह वेति। **य**

उपासक एवं वेद धर्मद्वयनिमित्तकं मकारालम्बनमुपासनं प्राज्ञस्य भगवतो विधत्ते स इदं सर्वं मिनोति सकलं जगत् स्वज्ञानशक्त्या व्याप्नोति । यथार्थतया ज्ञातुं प्रभवतीत्येतत् । अपीतिश्च भवति । अस्योपासकस्य सर्वदुःखक्षयो भवतीत्यर्थः । अङ्गस्तुतेरङ्गिस्तुतिपर्यवसायित्वात् प्रणवालम्बकं ब्रह्मोपासनमेव मुख्यमित्यत्र तात्पर्यमिति ॥४॥

卐 इत्यथर्ववेदीयमाण्डूक्योपनिषदो भगवद्रामानन्दाचार्यप्रणीतानन्दभाष्ये तृतीयः खण्डः ॥३॥ 卐

सुषुप्त स्थानक प्राज्ञ है जो कि समस्त प्रणव प्रतिपाद्य भगवान् श्रीराम का तृतीय अंश है वह प्रणव की तृतीय मात्रा है आलम्बनीभूत तृतीय मात्रा में भगवान् प्राज्ञ की उपासना करनी चाहिये । कौन वह तृतीय मात्रा है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं- **'मकार'** इति । मकार ही प्रणव की तृतीय मात्रा है जो कि प्राज्ञ की उपासना में आलम्बन है । मकार प्राज्ञ की उपासना में आलम्बन है उसमें निमित्तद्वय को बतलाते हैं **'मितेरपीतेर्वेति'** मिति शब्द का अर्थ है ज्ञान, प्राज्ञः विश्वतैजस को सुषुप्तिकाल में स्वकीय तादात्म्यापन्न बनाते हैं इसलिये माप कहते हैं ऐसा कहा जाता है । इसलिये मिति प्राज्ञ का धर्म है । मकार भी बहुत जल्दी ओम् के

उच्चारण काल में अकार उकार को स्वतादात्म्यापन्न की तरह करता है इसलिये **मिनोति** ऐसा कहा जाता है अतः मिति मकार का धर्म है। इसप्रकार मिति भी दोनों का धर्म है। प्राज्ञ सुषुप्तिदशा में जाग्रत् तथा स्वाप्निक पदार्थों का अप्यय विनाश करता है। मकार भी प्रणव के उच्चारण करने में मकारोच्चारण काल में अकार तथा उकार का अप्यय करता है। यहाँ अप्यय शब्द का अर्थ है विनाश। इसलिये अपिति भी दोनों का धर्म है एतादृश समता को ले करके मकार प्राज्ञ की उपासना में आलम्बन होता है। एतादृश धर्मद्वयरूप निमित्त से मकार को आलम्बन बना करके प्राज्ञोपासक का फल बतलाते है '**मिनोति ह वा**' इत्यादि जो उपासक धर्मद्वय निमित्तक प्राज्ञ की मकारालम्बक उपासना करता है वह संपूर्ण जगत् को अपनी ज्ञान शक्ति से व्याप्त कर लेता है अर्थात् पदार्थ मात्र को यथार्थ रूपसे जानता है। '**अपितिश्च भवति**' अर्थात् इस उपासक के सकल दुःख का विनाश हो जाता है। अंग का अर्थवाद अंगी के अर्थवाद में पर्यव सायी होता है अतः प्रणवमूलक परमपुरुष श्रीरामजी की उपासना ही यहाँ मुख्य है ऐसा तात्पर्य समझना चाहिये ॥४॥

卐 इतिमाण्डूक्योपनिषदः श्रीआनन्दभाष्यस्य प्रकाशे तृतीयः खण्डः 卐

#卐 अथ चतुर्थः खण्डः 卐

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद य एवं वेद ॥१॥

समासेयं माण्डूक्योपनिषद्

मात्रा विना का चतुर्थ पाद है जो मुक्तिदशा के सिवाय प्रयोग में आने वाला नहीं होता एवं प्रपञ्च से विहीन है तथा कल्याणमय और अहंकार प्रभृति का दुर करनेवाला उपमा रहित है ऐसा ओंकार का पाद प्रतिपादनीय है जो साधक उक्त प्रकार से ओंकार का स्वरूप को जानता है वह आत्मा एवं शरीर प्रभृति में स्व का अभिमान को त्यागकर सर्वेश्वर श्रीरामजी के अनुग्रह द्वारा नाद से बोधित परमात्मा में प्रवेश करता है यानी मुक्त पुरुष भोग्य पदार्थों का यथेच्छ भोग कर पाता है ॥१॥

卐 इति माण्डूक्योपनिषदो लघुदीपिका 卐

अमात्रो न विद्यते मात्रा यस्य सोऽमात्र एवंभूतश्चतुर्थः। तुरीय आत्मेत्यर्थः। विश्वादयो हि मात्रालम्बना उपासनायामकारादिभिर्मात्राभिः प्रतिपाद्यमानत्वात्। चतुर्थस्त्वात्मा न मात्रालम्बनः समग्रप्रणवप्रतिपाद्यत्वादतस्तुरीयोऽमात्र उच्यते। अयमेवांशीत्यर्थः। तुरीयस्य विशेषणानि पूर्वोक्तान्येवानुवदति-अव्यवहार्य इत्या

दिना । पूर्ववदेवार्थोऽद्वैत इतिपर्यन्तविशेषणवाचक पदानाम् । एवमोङ्कार ओङ्कारोऽप्यमात्र एव । तुरीय स्यालम्बनमित्यर्थः । समग्रं प्रणवालम्बनं तुरीयस्यो पासनं कर्तव्यमितिभावः । समग्रप्रणवालम्बनं भग वतस्तुरीयस्योपासनं यः कुरुते तस्य किं भवतीत्यत्राह- आत्मैवेत्यादिना । यः उपासक । एवं वेद समग्रं प्रण वमालम्बनं कृत्वा अव्यवहार्यत्वादिगुणगणविशिष्टं तुरी यमंशिनं भगवन्तमुपास्ते । स आत्मैव अहं ममताद्यभि मानपरित्यागपूर्वकं शुद्धस्वरूपो भूत्वा । आत्मनासर्वा न्तरात्मभूतेन परमात्मना स्वस्मिन् प्रसीदता आत्मानं तुरीयपदवाच्यं समग्रोङ्कारप्रतिपाद्यं भगवन्तं संविशति प्राप्नोति । समग्रप्रणवप्रतिपाद्यस्तुरीयशिवस्वरूपः पर मात्मा श्रीरामाख्यः तमेव साकेताख्यदेशविशेषगतं प्राप्नोति समग्रप्रणवालम्बनं तुरीयमुपासमान इति भावः ॥१॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु स्थितिपदं प्राप्तः स्वरूपैस्त्रिभि-
र्भुंक्ते भोजयते च जीवनिबहान् स्थूलान् विविक्ताननु ।
आनन्दं विषयानिमान् प्रणवमात्रोक्तोऽप्यमात्रश्च य-
स्तस्मै तुर्यपदाय सन्तु नतयो रामाय सद् ब्रह्मणे ॥१॥

卐 इत्यथर्ववेदीयमाण्डूक्योपनिषदो भगवद्रामानन्दाचार्य प्रणीतानन्दभाष्ये चतुर्थः खण्डः ॥४॥ 卐

अमात्र नहीं है मात्रा जिसमें उसे अमात्र कहते हैं एतादृश चतुर्थ है तृतीय आत्मा है। विश्वादिक जो है वह मात्रालम्बनक है क्योंकि ये सब उपासना में अकारादि मात्रा से प्रतिपादित होते हैं और तुरीय जो आत्मा है वह किसी भी मात्रा का आलम्बन लेनेवाली नहीं है। अतः तुरीय आत्मा अंशी अवयवी है। तुरीय का जो विशेषण पूर्व में कथित है उसका पुनः यहाँ अनुवाद करते हैं–'**अव्यवहार्य**' इत्यादि। अव्यवहार्य यहाँ से लेकर के अद्वैत पर्यन्त विशेषणों का अर्थ पूर्ववत् ही जानना चाहिये विशेषण वाचक पदों का। '**एवमोंकार**' इति। इसी तरह ओंकार को भी जानना चाहिये अर्थात् ओंकार भी अमात्र है जो कि तुरीय आत्मा का आलम्बन है समस्त प्रणवालम्बन तुरीय की उपासना करनी चाहिये। समग्र प्रणव के आलम्बन भगवान् तुरीय की जो उपासना करता है उस उपासक को क्या फल प्राप्त होता है वह बतलाते हैं–'**आत्मै वेत्यादि**' जो उपासक इस तरह समग्र प्रणव को आलम्बन करके अव्यवहार्यत्वादि गुण विशिष्ट तुरीय अंशी भगवान् श्रीरामजी की उपासना करता है वह मैं आत्मा ही हूँ, इसप्रकार अहं ममत्वाभिमान का

परित्यागपूर्वक शुद्ध स्वरूप हो करके आत्मा सबका अन्तरात्म स्वरूप परमात्मा से जो कि स्व में प्रसन्न होनेवाले हैं उनसे तुरीय पदवाच्य समस्त ओंकार प्रतिपाद्य परब्रह्म श्रीरामजी को प्राप्त करता है। समग्र प्रणवालम्बन तुरीय की उपासना करनेवाला उपासक समस्त प्रणव प्रतिपाद्य तुरीय अंशी स्वरूप श्रीसाकेत देश विशेष दिव्यधाम में स्थित श्रीरामाख्य परमात्मा को प्राप्त करता है ॥१॥

जो भगवान् श्रीरामजी विश्व तैजसादि तीन स्वरूप के द्वारा जाग्रत् स्वप्न तथा सुषुप्ति में स्थिति को प्राप्त करके जीव समुदाय को स्थूल सूक्ष्म विषय का भोग कराते हैं तथा करते हैं तथा प्रणव प्रतिपादित होने पर स्वरूप से अमात्र तुर्यपद वाच्य सदात्मक परब्रह्म स्वरूप सर्वेश्वर श्रीरामजी को अनेक वार सादर दण्डवत प्रणाम करता हूँ ॥२॥

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीतानन्दभाष्य प्रकाशे चतुर्थः खण्डः

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

卐 卐